

लक्ष्मी नारायणन

बनाम

एस.एस. पांडियन

सितंबर 4, 2000

[सैयद शाह मोहम्मद कादरी और वाई.के. सभरवाल, न्यायमूर्तिगण]

किराया और बेदखली

तमिलनाडु भवन पट्टा और किराया नियंत्रण अधिनियम 1960-दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908-आदेश 21 नियम 2, धारा 47-बेदखली की डिक्री-निष्पादन के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों द्वारा समझौता-आंशिक संतुष्टि दर्ज की गई-परिसर के हिस्से के संबंध में 3 साल के लिए नया पट्टा-डिक्री के हिस्से को 3 साल बाद निष्पादित किया जाना-किरायेदार का खाली करने में विफलता-अपीलकर्ता द्वारा दायर नया निष्पादन-खारिज-पुनरीक्षण याचिका खारिज-क्या पट्टा एक नए पट्टे के बराबर है-अभिनिर्धारित, नहीं-चूंकि समझौता निष्पादन न्यायालय द्वारा दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए इसका प्रभाव डिक्री को समाप्त करने का नहीं है।

अपीलकर्ता ने उत्तरदाता की बेदखली के लिए तमिलनाडु भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960 के तहत बेदखली याचिका दायर की, जिसे एक पक्षीय डिक्री किया गया था। अपीलकर्ता ने एक पक्षीय डिक्री के निष्पादन के लिए एक आवेदन दायर किया। निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों ने न्यायालय के बाहर एक समझौता किया और उत्तरदाता ने भवन के एक हिस्से का कब्जा त्याग कर दिया और शेष वाद परिसर के लिए, पक्षकारों ने किराए की उसी दर के साथ तीन साल के लिए पट्टे का समझौता किया। समझौते में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान था कि यदि उत्तरदाता उक्त अवधि की समाप्ति पर परिसर को खाली करने में विफल रहता है, तो अपीलकर्ता उसके खिलाफ डिक्री निष्पादित करने और उसका कब्जा प्राप्त करने का हकदार होगा। न्यायालय में समझौते का ज्ञापन दाखिल करने पर, निष्पादन याचिका को 'संचालित नहीं किया गया' के रूप में खारिज कर दिया गया था।

3 वर्ष की समाप्ति के बाद उत्तरदाता द्वारा संपत्ति खाली करने में विफल रहने पर, अपीलकर्ता ने परिसर का कब्जा प्राप्त करने के लिए डिक्री के निष्पादन के लिए एक नई याचिका दायर की और निष्पादन न्यायालय ने कब्जा सौंपने का आदेश दिया। उत्तरदाता ने कब्जा सौंपने के आदेश को वापस लेने और निष्पादन याचिका को खारिज करने के लिए एक आवेदन दायर किया। अपीलकर्ता ने निष्पादन याचिका में संपत्ति के विवरण में संशोधन की अनुमति के लिए भी एक आवेदन दायर किया। निष्पादन न्यायालय ने एक सामान्य आदेश द्वारा अपीलकर्ता की याचिका को खारिज कर दिया और उत्तरदाता की याचिका को स्वीकार कर लिया। अपीलकर्ता ने उक्त सामान्य आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में दो पुनरीक्षण याचिकाएं दायर कीं। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज कर दिया। इस न्यायालय में अपील में, अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि पक्षकारों के बीच समझौते ने डिक्री को ही समाप्त नहीं किया, कि इसने केवल डिक्री के निष्पादन को स्थगित कर दिया और चूंकि उत्तरदाता ने उसे दिए गए तीन वर्षों की समाप्ति पर परिसर खाली नहीं किया, अपीलकर्ता डिक्री को निष्पादित करने और परिसर का कब्जा प्राप्त करने का हकदार है, और चूंकि डिक्री का समझौता/समायोजन आदेश 21 के नियम 3 के अनुसरण में निष्पादन न्यायालय द्वारा दर्ज नहीं किया गया था, इसलिए न्यायालय इसे मान्यता नहीं दे सकता है और यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता है कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के तहत कार्यवाही में डिक्री समाप्त हो गई थी। उत्तरदाता ने तर्क दिया कि निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान समझौते और तीन साल के लिए नए पट्टा विलेख के निष्पादन ने डिक्री को समाप्त कर दिया; कि चूंकि उत्तरदाता किराया अधिनियम के संरक्षण का आनंद ले रहा होगा, वह मौजूदा डिक्री के तहत बेदखल होने के लिए उत्तरदायी नहीं था, कि दी.प्र.सं. का आदेश 21 नियम 2 डिक्री धारक के लाभ के लिए अधिनियमित किया गया था और इसके अलावा दी.प्र.सं. के तहत न्यायालय द्वारा डिक्री के समायोजन को दर्ज करने का कोई तरीका निर्धारित नहीं होने के कारण, समझौते का ज्ञापन दाखिल करने पर निष्पादन याचिका को खारिज करने वाला न्यायालय का आदेश दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 2 के अर्थ

में डिक्री के समायोजन को दर्ज करने के बराबर होगा, और, इसलिए, निष्पादन न्यायालय ने सही रूप से समझौते का संज्ञान लिया और निष्पादन याचिका को खारिज कर दिया।

अपील की अनुमति देते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. ऐसे वाद में जहां डिक्री पारित होने के बाद पक्षकार समझौता करते हैं, डिक्री की निष्पादन क्षमता पर समझौते का प्रभाव पक्षकारों के इरादे पर निर्भर करता है, जो कानून और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है और जिसे प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में डिक्री और समझौते की व्याख्या पर दी.प्र.सं. की धारा 47 के तहत एक आवेदन पर निष्पादन न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाना है। यदि ऐसे निर्धारण पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पक्षकारों का इरादा डिक्री को समाप्त करना है और या तो डिक्री धारक या निर्णित-ऋणी ने उस न्यायालय द्वारा दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 2 के तहत समझौता दर्ज कराया है जिसका कर्तव्य डिक्री को निष्पादित करना है, तो निष्पादन न्यायालय द्वारा डिक्री का निष्पादन आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यदि पक्षकारों का इरादा डिक्री को जीवित रखना है और इसे समझौते में पक्षकारों के बीच सहमत तरीके से प्रभावी करना है, तो डिक्री को तदनुसार प्रभावी किया जाएगा या वैसे ही निष्पादित किया जाएगा, जो इस बात पर निर्भर करता है कि समझौता उपर्युक्त न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया है या नहीं। डिक्री, समझौते के जापन और वाद के तथ्यों को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, इसमें कोई संदेह नहीं है कि मौजूदा डिक्री समाप्त नहीं हुई है। पक्षकार डिक्री को आंशिक रूप से संतुष्ट करके और शेष भाग के संबंध में डिक्री के निष्पादन को तीन साल तक स्थगित करके डिक्री के प्रवर्तन के तरीके और समय पर सहमत हुए। [79-एफ-एच; 80-जी]

सुल्ताना बेगम बनाम प्रेम चंद जैन, [1997] 1 एससीसी 373; बादामो देवी और अन्य बनाम सागर शर्मा, [1999] 6 एससीसी 30; द अवध कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम ठकुरियन बिंदू बासनी कुएर और अन्य, (1938-39) (66) पीसी 84 और श्रीमती कल्लू और अन्य बनाम ढाकादेवी और अन्य, [1982] 3 एससीआर 207, संदर्भित।

2. निष्पादन न्यायालय ने केवल पिछली निष्पादन याचिका को संचालित नहीं किया गया के रूप में खारिज कर दिया है। इसने पक्षकारों के बीच समझौते को दर्ज नहीं किया; केवल इसी कारण से दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 3 के प्रावधानों के मद्देनजर डिक्री के निष्पादन को रोकने के लिए समझौते की दलील नहीं दी जा सकती है। [81-बी]

3. यह सच है कि उन्हीं नियमों में समायोजन दर्ज करने के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया या सूत्र निर्धारित नहीं है; नियम (2) के तहत यह आवश्यक है कि न्यायालय समझौते के तथ्य का संज्ञान ले और उसे स्वीकार करने या प्रभावी करने के लिए उचित आदेश पारित करे। स्वीकार्य रूप से, इस वाद में ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। यहां तक कि यह मानते हुए भी, बिना ऐसा अभिनिर्धारित किए कि आदेश समझौते को दर्ज करने के बराबर है क्योंकि इसका डिक्री को समाप्त करने का प्रभाव नहीं था, डिक्री को निष्पादित किया जाना है। समझौता इंगित करता है कि डिक्री के एक हिस्से की आंशिक संतुष्टि हुई है और शेष भाग के संबंध में, उन्होंने परिसर खाली करने के लिए उत्तरदाता को तीन साल का समय देने पर विचार किया। फिर भी, यह इस निष्कर्ष को उचित नहीं ठहराता है कि वाद परिसर के शेष भाग के संबंध में डिक्री अनिष्पादन योग्य हो गई है। यह स्थिति होने पर, डिक्री को निष्पादित करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है और निष्पादन न्यायालय ने अपीलकर्ता को कब्जा सौंपने का निर्देश देने वाले अपने पूर्व आदेश को वापस लेने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। उच्च न्यायालय ने भी निष्पादन न्यायालय के आदेश की पुष्टि करने में त्रुटि की है। [81-सी-एफ]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1997 की दीवानी अपील संख्या 7809-7810।

1996 के सी.आर.पी. संख्या 2705-06 में मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 19.6.97 के निर्णय और आदेश से।

अपीलकर्ता की ओर से टी.एल.वी. अय्यर, सुश्री एन. अन्नपूर्णा और नागभूषण।

उत्तरदाता की ओर से एस. शिव सुब्रमण्यम, रामसुब्बाराजू, एस. श्रीनिवासन, पी.आर. साल्वाराज और जे.बी. रवि।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा सुनाया गया

सैयद शाह मोहम्मद कादरी, न्यायमूर्ति। ये अपीलें, विशेष अनुमति द्वारा, 20 फरवरी, 1995 के लघु वाद न्यायालय, मद्रास (निष्पादन न्यायालय) के आदेश की पुष्टि करते हुए 19 जून, 1997 को 1996 के सी.आर.पी. संख्या 2705 और 2706 में मद्रास में न्यायपालिका के उच्च न्यायालय के सामान्य आदेश के खिलाफ निर्देशित हैं।

अपीलकर्ता नमसिवाया चेट्टी लेन, मद्रास के संख्या 31 और 32 परिसर का मालिक है, जिसका क्षेत्रफल चार हजार फीट है (संक्षेप में, 'वाद परिसर') और उत्तरदाता 5,000 रुपये के मासिक किराए पर किरायेदार है। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता की बेदखली के लिए तमिलनाडु भवन (पट्टा और किराया नियंत्रण) अधिनियम, 1960 के तहत बेदखली याचिका (1989 की आर.सी.ओ.पी. संख्या 2852) दायर की, जिसे 2 मई, 1990 को एक पक्षीय डिक्री किया गया था। अपीलकर्ता (डिक्री धारक) ने उत्तरदाता (निर्णित-ऋणी) को वाद परिसर से बेदखल करने के लिए उक्त एक पक्षीय डिक्री के निष्पादन के लिए लघु वाद न्यायालय, मद्रास में 1990 का ई.पी. संख्या 459 दायर किया। निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों ने 7 नवंबर, 1990 को न्यायालय के बाहर एक समझौता किया। इसके अनुसरण में, उत्तरदाता ने द्वार संख्या 32 के सामने के हिस्से, जिसका क्षेत्रफल 840 वर्ग फुट है, का कब्जा त्याग दिया, और शेष वाद परिसर, अर्थात् द्वार संख्या 31 और द्वार संख्या 32 के पिछले हिस्से (संक्षेप में, 'परिसर') के लिए, पक्षकारों ने तीन साल के लिए पट्टे का समझौता किया, जिसमें किराए की दर वही रही। समझौते में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह प्रावधान है कि यदि उत्तरदाता उक्त अवधि की समाप्ति पर परिसर खाली करने में विफल रहता है, तो अपीलकर्ता उसके खिलाफ डिक्री निष्पादित करने और उसका कब्जा प्राप्त करने का हकदार होगा। न्यायालय में समझौते का ज्ञापन दाखिल करने पर, ई.पी. को 'संचालित नहीं किया गया' के रूप में खारिज कर दिया गया था।

उक्त अवधि की समाप्ति से ठीक पहले, अपीलकर्ता ने अपने अधिवक्ता द्वारा भेजे गए एक लिखित सूचना द्वारा, उत्तरदाता को 6 नवंबर, 1993 को परिसर का खाली कब्जा सौंपने के लिए

कहा, जिस दिनांक को तीन साल की अवधि समाप्त होगी। उत्तरदाता के ऐसा करने में विफल रहने पर, अपीलकर्ता ने परिसर के कब्जे की वसूली के लिए डिक्री के निष्पादन के लिए एक नया ई.पी. (1993 का संख्या 664) दायर किया और निष्पादन न्यायालय ने 16 नवंबर, 1993 को कब्जा सौंपने का आदेश दिया। इस बीच, उत्तरदाता ने 1993 का ई.ए. संख्या 973 दायर किया, जिसमें 16 नवंबर, 1993 के आदेश को वापस लेने और ई.पी. को खारिज करने की प्रार्थना की गई। अपीलकर्ता ने निष्पादन याचिका में संपत्ति के विवरण में संशोधन की अनुमति के लिए 1994 का ई.ए. संख्या 299 भी दायर किया। 20 फरवरी, 1995 को निष्पादन न्यायालय ने एक सामान्य आदेश द्वारा अपीलकर्ता की याचिका को खारिज कर दिया और उत्तरदाता की याचिका को स्वीकार कर लिया। अपीलकर्ता ने उक्त सामान्य आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में उपर्युक्त दो दीवानी पुनरीक्षण याचिकाएं दायर कीं। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिकाओं को खारिज कर दिया और इस प्रकार अपीलकर्ता इन अपीलों में हमारे समक्ष है।

अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री टी.एल.वी. अय्यर ने तर्क दिया कि पक्षकारों के बीच समझौते ने डिक्री को ही समाप्त नहीं किया; इसने केवल डिक्री के निष्पादन को स्थगित कर दिया और चूंकि उत्तरदाता ने उसे दिए गए तीन वर्षों की समाप्ति पर परिसर खाली नहीं किया, अपीलकर्ता डिक्री को निष्पादित करने और परिसर का कब्जा प्राप्त करने का हकदार है। किसी भी स्थिति में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं, चूंकि आदेश 21 के नियम 3 के मद्देनजर निष्पादन न्यायालय द्वारा डिक्री का समझौता/समायोजन दर्ज नहीं किया गया था, इसलिए न्यायालय इसे मान्यता नहीं दे सकता है और यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकता है कि दीवानी प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में, 'दी.प्र.सं.') की धारा 47 के तहत कार्यवाही में डिक्री समाप्त हो गई थी।

उत्तरदाता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. शिवसुब्रमण्यम ने तर्क दिया कि निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान समझौते और तीन साल के लिए नए

पट्टा विलेख के निष्पादन ने डिक्री को समाप्त कर दिया; चूंकि उत्तरदाता अधिनियम के संरक्षण का आनंद ले रहा होगा, वह मौजूदा डिक्री के तहत बेदखल होने के लिए उत्तरदायी नहीं था। उन्होंने तर्क दिया कि दी.प्र.सं. का आदेश 21 नियम 2 डिक्री धारक के लाभ के लिए अधिनियमित किया गया था और इसके अलावा दी.प्र.सं. के तहत न्यायालय द्वारा डिक्री के समायोजन को दर्ज करने का कोई तरीका निर्धारित नहीं होने के कारण, समझौते का ज्ञापन दाखिल करने पर ई.पी. को खारिज करने वाला न्यायालय का आदेश दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 2 के अर्थ में डिक्री के समायोजन को दर्ज करने के बराबर होगा, इसलिए, निष्पादन न्यायालय ने सही रूप से समझौते का संज्ञान लिया और ई.पी. को खारिज कर दिया।

इन तर्कों के मद्देनजर, जो बिंदु विचार के लिए उठता है वह यह है: क्या पक्षकारों के बीच हुए समझौते और नए पट्टा विलेख के निष्पादन के मद्देनजर, 2 मई, 1990 की एक पक्षीय डिक्री समाप्त हो गई, जिससे अपीलकर्ता मौजूदा डिक्री के निष्पादन में परिसर का कब्जा प्राप्त नहीं कर सकता।

यहां यह बताया जा सकता है कि एक सक्षम न्यायालय द्वारा डिक्री पारित होने पर पक्षकारों के अधिकार स्पष्ट होने के बाद, कानून में उन्हें न्यायालय के बाहर अपने विवादों को सुलझाने से नहीं रोका गया है। किन्तु किसी समझौते को न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त कराने के लिए उसका अभिलेखन दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 2 के अधीन किया जाना आवश्यक है। ऐसा अभिलेखन न कराए जाने के परिणामदी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 3 में विनिर्दिष्ट हैं। आदेश 21 के नियम 2 एवं 3 इस प्रकार हैं :

"2. डिक्री-धारक को न्यायालय के बाहर भुगतान- (1) जहां किसी भी प्रकार की डिक्री के तहत देय कोई धन न्यायालय के बाहर भुगतान किया जाता है, [या किसी भी प्रकार की डिक्री अन्यथा समायोजित की जाती है] पूर्ण या आंशिक रूप से डिक्री-धारक की संतुष्टि के लिए, डिक्री-धारक ऐसे भुगतान या समायोजन को उस न्यायालय में प्रमाणित करेगा जिसका कर्तव्य डिक्री को निष्पादित करना है, और न्यायालय तदनुसार उसे दर्ज करेगा।

(2) निर्णित-ऋणी [या कोई भी व्यक्ति जो निर्णित-ऋणी के लिए ज़मानतदार बन गया है] भी न्यायालय को ऐसे भुगतान या समायोजन की सूचना दे सकता है, और न्यायालय से डिक्री-धारक को एक सूचना जारी करने के लिए आवेदन कर सकता है ताकि न्यायालय द्वारा तय किए जाने वाले दिन कारण बताओ कि ऐसे भुगतान या समायोजन को प्रमाणित के रूप में दर्ज क्यों नहीं किया जाना चाहिए; और यदि, ऐसे सूचना की तामील के बाद, डिक्री-धारक कारण बताने में विफल रहता है कि भुगतान या समायोजन को प्रमाणित के रूप में दर्ज क्यों नहीं किया जाना चाहिए, तो न्यायालय तदनुसार उसे दर्ज करेगा।

(2-ए)

(3) एक भुगतान या समायोजन, जिसे पूर्वोक्त के रूप में प्रमाणित या दर्ज नहीं किया गया है, डिक्री को निष्पादित करने वाले किसी भी न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं किया जाएगा।"

ऊपर दिए गए नियम 2 के उप-नियम (1) में यह आवश्यक है कि जहां डिक्री के तहत देय किसी धन का भुगतान न्यायालय के बाहर किया जाता है या किसी भी प्रकार की डिक्री को डिक्री-धारक की संतुष्टि के लिए पूर्ण या आंशिक रूप से समायोजित किया जाता है, वह उस भुगतान या समायोजन को उस न्यायालय में प्रमाणित करेगा जिसे डिक्री निष्पादित करनी है और न्यायालय को इसे दर्ज करने का निर्देश दिया जाता है। इसका उप-नियम (2) निर्णित-ऋणी या उस व्यक्ति को जो उसका ज़मानतदार बन गया है, ऐसे भुगतान या समायोजन के बारे में न्यायालय को सूचित करने में सक्षम बनाता है और इसे दर्ज करने की प्रक्रिया निर्धारित करता है। नियम 3 डिक्री निष्पादित करने वाले प्रत्येक न्यायालय को किसी ऐसे भुगतान या समायोजन को मान्यता देने से रोकता है जिसे उपर्युक्त उप-नियमों के तहत न्यायालय द्वारा प्रमाणित या दर्ज नहीं किया गया है।

इस न्यायालय ने *सुल्ताना बेगम बनाम प्रेम चंद जैन*, [1997] 1 एससीसी 373 में संपूर्ण वाद कानून की समीक्षा करने के बाद निम्नलिखित निर्धारित किया:

"पक्षकारों अर्थात् डिक्री-धारक और निर्णित-ऋणी के लिए डिक्री के तहत अपने अधिकारों और दायित्वों के संबंध में एक संविदा या समझौता करने का विकल्प खुला है। यदि ऐसी संविदा या समझौता डिक्री के समायोजन के बराबर है, तो इसे आदेश 21 के नियम 2 के तहत न्यायालय द्वारा दर्ज किया जाना चाहिए। एक समझौता, संविदा या समझौता जिसका डिक्री के उस हद तक संतुष्ट होने के कारण पूर्ण या आंशिक रूप से डिक्री को समाप्त करने का प्रभाव होता है, इस नियम के अर्थ के भीतर डिक्री का समायोजन माना जाएगा और न्यायालय, यदि संपर्क किया जाता है, तो समायोजन का प्रमाण पत्र जारी करेगा। धन का अप्रमाणित भुगतान या समायोजन जो न्यायालय द्वारा आदेश 21 नियम 2 के तहत दर्ज नहीं किया गया है, निष्पादन न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस तरह की स्थिति में, निष्पादन न्यायालय केवल यह पूछताछ कर सकता है कि क्या अंकित मूल्य पर ली गई दलील पूर्ण या आंशिक रूप से डिक्री के समायोजन या संतुष्टि के बराबर है, और क्या ऐसे समायोजन या संतुष्टि का डिक्री को उस हद तक समाप्त करने का प्रभाव था। यदि निष्पादन न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि डिक्री पूरी तरह या आंशिक रूप से समायोजित की गई थी लेकिन समझौता या समायोजन या संतुष्टि न्यायालय द्वारा दर्ज और/या प्रमाणित नहीं की गई थी, तो निष्पादन न्यायालय उन्हें मान्यता नहीं देगा और डिक्री को निष्पादित करने के लिए आगे बढ़ेगा।"

इस निर्णय का पालन इस न्यायालय द्वारा *बादामो देवी और अन्य बनाम सागर शर्मा*, [1999] 6 एससीसी 30 में किया गया था।

जहां किसी निष्पादन कार्यवाही में दी.प्र.सं. की धारा 47 के तहत डिक्री की निष्पादन क्षमता पर इस आधार पर आपत्ति की जाती है कि एक समझौते के आधार पर, डिक्री समाप्त हो

गई और अनिष्पादन योग्य हो गई, तो प्रासंगिक प्रश्न यह पूछा जाना चाहिए कि क्या समझौता उस न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया था जिसका कर्तव्य डिक्री को निष्पादित करना है।

1939 में ही, प्रिवी काउंसिल ने *द अवध कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम ठकुरियन बिंदू बासनी कुएर और अन्य*, [1938-39] 66 पीसी 84 में इस विषय पर कानून को इस प्रकार निर्धारित किया था:

"यदि धारा 47 के तहत कार्य करने वाले न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि समझौते का सही प्रभाव ऋणी द्वारा कुछ वादों के प्रतिफल में डिक्री को तुरंत चुकाना था, तो निस्संदेह न्यायालय के पास निष्पादन कार्यवाही में समझौते को लागू करने का अवसर नहीं होगा, बल्कि लेनदार को संविदा पर एक अलग वाद लाने के लिए छोड़ देगा। दूसरी ओर, यदि समझौते का उद्देश्य डिक्री के तहत ऋणी के दायित्व को नियंत्रित करना और उसके प्रवर्तन के समय या तरीके पर प्रभाव डालना है, तो यह धारा 47 के तहत निपटा जाने वाला मामला है। ऐसे मामले में यह कहना कि ऋणदाता के पास संभवतः पृथक वाद दायर करने का उपाय उपलब्ध हो सकता है, संहिता का गलत अर्थ ग्रहण करना होगा; क्योंकि संहिता यह अपेक्षा करती है कि ऐसे सभी विषयों का निपटारा निष्पादन कार्यवाही में ही किया जाए, और इस प्रकार वह निष्पादन न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा उसके कर्तव्यों के विस्तार के संबंध में एक व्यापक दृष्टिकोण को प्रकट करती है। लॉर्डशिप गोवर्धन दास (I) के वाद में इस कथन से सहमत हैं कि कई मामलों में "डिक्री-धारक और निर्णित-ऋणी के बीच एक समझौता जो "निष्पादन कार्यवाही के दौरान" किया गया था, जिसे विधिवत दर्ज किया गया था, "लागू किया गया है" और उनकी यह राय नहीं है कि यह प्रथा, जो व्यापक और गहरी दोनों है, संहिता के विपरीत है। उनकी राय है कि वर्तमान वाद में इन निष्पादन कार्यवाही में समझौतों को लागू किया जा सकता है और किया जाना चाहिए"।

एससीआर 207 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"जब निष्पादन कार्यवाही में समझौता याचिका दायर की जाती है, और डिक्री-धारक द्वारा शुरू किए गए बाद के निष्पादन पर निर्णित-ऋणी द्वारा यह तर्क उठाया जाता है कि समझौते ने पक्षकारों के बीच एक नई संविदा को जन्म दिया है और जिस डिक्री को निष्पादित करने की मांग की गई है वह निष्पादन योग्य नहीं है, तो जो देखा जाना है वह यह है कि क्या समझौते के परिणामस्वरूप डिक्री समाप्त हो गई है और एक नई संविदा उभरी है। जब बेदखली के लिए डिक्री के निष्पादन के दौरान समझौता होता है, तो समझौता डिक्री को समाप्त कर सकता है और एक नया पट्टा बना सकता है, या समझौता डिक्री के निर्वहन के लिए केवल एक तरीका प्रदान कर सकता है। वास्तव में जो होता है वह समझौते के पक्षकारों के इरादे पर निर्भर करता है। और इरादे को समझौते की शर्तों और समझौते के आधार पर न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए आदेश सहित आसपास की परिस्थितियों से इकट्ठा किया जाना है"।

ऐसे वाद में जहां वाद में डिक्री पारित होने के बाद पक्षकार समझौता करते हैं, डिक्री की निष्पादन क्षमता पर समझौते का प्रभाव पक्षकारों के इरादे पर निर्भर करता है, जो कानून और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न है और जिसे प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में डिक्री और समझौते की व्याख्या पर दी.प्र.सं. की धारा 47 के तहत एक आवेदन पर निष्पादन न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाना है। यदि ऐसे निर्धारण पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पक्षकारों का इरादा डिक्री को समाप्त करना है और या तो डिक्री धारक या निर्णित-ऋणी ने उस न्यायालय द्वारा दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 2 के तहत समझौता दर्ज कराया है जिसका कर्तव्य डिक्री को निष्पादित करना है, तो निष्पादन न्यायालय द्वारा डिक्री का निष्पादन आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। किन्तु यदि पक्षकारों का आशय डिक्री को प्रभावी बनाए रखने तथा समझौते में उनके मध्य सहमत शर्तों के अनुसार उसे कार्यान्वित करने का हो, तो डिक्री को उसी

अनुरूप प्रभावी किया जाएगा अथवा उसका निष्पादन किया जाएगा; यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उक्त समझौता, जैसा कि पूर्वोक्त है, न्यायालय द्वारा अभिलिखित किया गया है या नहीं।

वर्तमान वाद में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, उत्तरदाता की बेदखली के लिए अपीलकर्ता के पक्ष में डिक्री पारित होने के बाद, पक्षकारों ने निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान समझौता किया, जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह उल्लेख है कि वाद परिसर का एक हिस्सा अपीलकर्ता को सौंप दिया गया था और इसके शेष भाग के संबंध में, उत्तरदाता को वाद परिसर को खाली करने और इसका कब्जा अपीलकर्ता को सौंपने के लिए तीन साल की अनुमति दी गई थी, जिसके लिए पक्षकारों के बीच पट्टे का समझौता भी किया गया था। समझौता ज्ञापन का खंड (6) इस प्रकार है:

"(6) समझौते की दिनांक से 3 वर्ष की समाप्ति पर यदि किरायेदार उपर्युक्त संदर्भित संपत्तियों का खाली कब्जा त्याग नहीं करता है, तो मकान मालिक किरायेदार को किसी भी सूचना के बिना आरसीओपी संख्या 2852/89 में दिए गए बेदखली के आदेश को निष्पादित करने का हकदार होगा (3 पंप सेट और अन्य चल संपत्तियों को छोड़कर)।"

न्यायालय में समझौता दाखिल करने पर; ई.पी. को संचालित नहीं किया गया के रूप में खारिज कर दिया गया था। अतः आदेश 21 के नियम 2 द्वारा अभिप्रेत रीति से समझौते का कोई अभिलेखन नहीं हुआ है; इसलिए उपनियम (3) की भाषा को दृष्टिगत रखते हुए न्यायालय उस समझौते को मान्यता नहीं दे सकता।

हालाँकि, उत्तरदाता का तर्क, निष्पादन न्यायालय के इस निष्कर्ष पर आधारित है कि पक्षकारों ने 7.11.90 को वाद परिसर के संबंध में एक नया पट्टा किया है, क्योंकि पक्षकारों के बीच एक नया पट्टा किया गया था, वह अधिनियम के संरक्षण का हकदार है और जब तक एक सक्षम न्यायालय द्वारा उत्तरदाता के खिलाफ बेदखली की एक नई डिक्री पारित नहीं की जाती है, अपीलकर्ता मौजूदा डिक्री को निष्पादित करके उसे वाद परिसर से बेदखल नहीं कर सकता है।

डिक्री, समझौते के ज्ञापन को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर और इस वाद के तथ्यों पर, हमें कोई संदेह नहीं है कि मौजूदा डिक्री समाप्त नहीं हुई है। पक्षकार डिक्री को आंशिक रूप से संतुष्ट करके और शेष भाग के संबंध में डिक्री के निष्पादन को तीन साल तक स्थगित करके डिक्री के प्रवर्तन के तरीके और समय पर सहमत हुए।

यह तथ्य कि पक्षकारों ने समझौते के अनुसरण में तीन साल के लिए एक नया पट्टा विलेख किया है, एक से अधिक कारणों से ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। प्रथम, क्योंकि समझौता आदेश 21 के नियम 2 के अधीन अभिलिखित नहीं किया गया था; और द्वितीय, क्योंकि तीन वर्ष की अवधि के लिए किया गया किरायेदारी अनुबंध, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 तथा भारतीय पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों के आलोक में, जिस प्रकार पंजीकृत होना अपेक्षित था, उस प्रकार पंजीकृत दस्तावेज़ नहीं था। जो भी हो, हम अपने निर्णय को दूसरे आधार पर टिकाने का प्रस्ताव नहीं करते हैं क्योंकि यह बिंदु न तो निष्पादन न्यायालय के समक्ष और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया था। अब हमारे पास केवल पहला कारण बचा है। निष्पादन न्यायालय ने केवल पूर्व ई.पी. को संचालित नहीं किया गया के रूप में खारिज कर दिया है। इसने पक्षकारों के बीच समझौते को दर्ज नहीं किया, केवल इसी कारण से दी.प्र.सं. के आदेश 21 के नियम 3 के प्रावधानों के मद्देनजर डिक्री के निष्पादन को रोकने के लिए समझौते की दलील नहीं दी जा सकती है।

तथापि, श्री शिवसुब्रमणियम का तर्क यह है कि चूँकि नियमों के अधीन समायोजन को अभिलेखित करने की कोई विशिष्ट प्रक्रिया अथवा विधि विनिर्दिष्ट नहीं की गई है, इसलिए निष्पादन याचिका को प्रत्याहृत मानकर निरस्त किए जाने वाला आदेश, निष्पादन न्यायालय द्वारा समझौते के अभिलेखन के रूप में माना जाना चाहिए। हमें खेद है, हम विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते। यह सच है कि उक्त नियमों में समायोजन दर्ज करने के लिए कोई विशिष्ट प्रक्रिया या सूत्र निर्धारित नहीं है; नियम (2) के तहत यह आवश्यक है कि न्यायालय समझौते के तथ्य का संज्ञान ले और उसे स्वीकार करने या प्रभावी करने के लिए

उचित आदेश पारित करे। स्वीकार्य रूप से, इस वाद में ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। यहां तक कि यह मानते हुए भी, बिना ऐसा अभिनिर्धारित किए कि आदेश समझौते को दर्ज करने के बराबर है क्योंकि इसका डिक्री को समाप्त करने का प्रभाव नहीं था, जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, डिक्री को निष्पादित किया जाना है। समझौता इंगित करता है कि डिक्री के एक हिस्से की आंशिक संतुष्टि हुई है और शेष भाग के संबंध में, उन्होंने परिसर खाली करने के लिए उत्तरदाता को तीन साल का समय देने पर विचार किया। फिर भी, यह इस निष्कर्ष को उचित नहीं ठहराता है कि वाद परिसर के शेष भाग के संबंध में डिक्री अनिष्पादन योग्य हो गई है।

यह स्थिति होने पर, डिक्री को निष्पादित करने में कोई कानूनी बाधा नहीं है और निष्पादन न्यायालय ने अपीलकर्ता को कब्जा सौंपने का निर्देश देने वाले 16 नवंबर, 1993 के अपने पूर्व आदेश को वापस लेने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। उच्च न्यायालय ने भी निष्पादन न्यायालय के आदेश की पुष्टि करने में त्रुटि की है।

उपरोक्त कारणों से, हम चुनौती के तहत आदेश को बनाए रखने में असमर्थ हैं। तदनुसार अपीलों को स्वीकार किया जाता है; 20 फरवरी, 1995 के निष्पादन न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए सी.आर.पी. संख्या 2705-06/96 में पारित उच्च न्यायालय के दिनांक 19 जून, 1997 के आदेश को अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, निष्पादन न्यायालय 16 नवंबर, 1993 को पारित आदेश को प्रभावी करेगा। उत्तरदाता अपीलकर्ता को इन अपीलों का खर्च चुकाएगा।

वीएम।

अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।